दर्शन-ज्योति
रैफर्ड वार्षिक दार्शनिक शोध-पत्रिका
(Referred Annual Philosophical Research Journal)
ISSN : 2249-1198
वर्ष–3 अंक–1 (सितंबर 2013–अगस्त 2014) पृ. 106–116

भारतीय परंपरा में सौंदर्य का 'दर्शनशास्त्र' : एक संश्लेषण

योगाचार्य डॉ. शीलक राम
असिसटेंट प्रोफेसर
दर्शन-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

शोध-आलेख सार

पदार्थ व चेतना का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है जिसे अतीत के भारतीय दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, मनीषियों व योगियों ने न छुआ हो लेकिन भूतकाल में पश्चिम ने भारतीय सभ्यता की, ज्यादातर इसके सौंदर्यात्मक पक्ष की, विद्वेषपूर्ण व सहानुभूतिरहित आलोचना की है तथा उस आलोचना ने इसकी ललित कलाओं, स्थापत्य, मूर्तिकला व चित्रकला की घृणापूर्ण या तीव्र निंदा का रूप ग्रहण किया है। किसी जाति की संस्कृति का सौंदर्यात्मक पहलू परम महत्व रखता है तथा अपने मूल्यांकन में लगभग उतनी ही सूक्ष्म परीक्षा व सतर्कता की अपेक्षा रखता है जितनी कि दर्शन, धर्म व केंद्रीय रचनात्मक विचार जो कि भारतीय जीवन के आधार रहे हैं और जिनकी कि अधिकांश कला एवं साहित्य अर्थपूर्ण सौंदर्यात्मक रूपों में एक सचेतन अभिव्यक्ति है। जिन चीजों के मर्म में जो मनुष्य पैठ ही नहीं सकता उन पर निर्णय देने का भला वह प्रयास ही क्यों करे और रंगों पर व्याख्यान देने वाले अंधे आदमी-सा दृश्य वह उत्पन्न ही क्यों करे? भारतीय कला का भारतीय कलात्मक सृजन का संपूर्ण आधार जो कि पूर्णतया सचेतन व शास्त्रसम्मत है, प्रत्यक्षतः आध्यात्मिक व अंतर्ज्ञानात्मक है।

मुख्य-शब्द : सौंदर्य, पदार्थ, चेतना, तर्कबुद्धि, अंतर्ज्ञान, सौंदर्याभिव्यक्ति, चित्तवृत्ति, इंद्रियानुभूति।

पदार्थ व चेतना का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है जिसे अतीत के भारतीय दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, मनीषियों व योगियों ने न छुआ हो लेकिन भूतकाल में पश्चिम ने भारतीय सभ्यता की, ज्यादातर इसके सौंदर्यात्मक पक्ष की, विद्वेषपूर्ण व सहानुभूतिरहित

आलोचना की है तथा उस आलोचना ने इसकी ललित कलाओं, स्थापत्य, मूर्तिकला व चित्रकला की घृणापूर्ण या तीव्र निंदा का रूप ग्रहण किया है। किसी जाति की संस्कृति का सौंदर्यात्मक पहलू परम महत्त्व रखता है तथा अपने मूल्यांकन में लगभग उतनी ही सूक्ष्म परीक्षा व सतर्कता की अपेक्षा रखता है जितनी कि दर्शन, धर्म व केंद्रीय रचनात्मक विचार जो कि भारतीय जीवन के आधार रहे हैं और जिनकी कि अधिकांश कला एवं साहित्य अर्थपूर्ण सौंदर्यात्मक रूपों में एक सचेतन अभिव्यक्ति है। जिन चीजों के मर्म में जो मनुष्य पैठ ही नहीं सकता उन पर निर्णय देने का भला वह प्रयास ही क्यों करे और रंगों पर व्याख्यान देने वाले अंधे आदमी-सा दृश्य वह उत्पन्न ही क्यों करे? भारतीय कला का भारतीय कलात्मक सृजन का संपूर्ण आधार जो कि पूर्णतया सचेतन व शास्त्रसम्मत है, प्रत्यक्षत: आध्यात्मिक व अंतर्ज्ञानात्मक है। यह हो सकता है कि मन या आत्मा की शक्ति हो एक हो तथा वह विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार से कार्य करे अथवा एक ही प्रकार के अंतर्ज्ञान की तैयारी लंबे बौद्धिक शिक्षण के द्वारा संपन्न हो सकती है, पर वह इसे बौद्धिक प्रक्रिया का अंतिम पग नहीं बना देती, जैसे कि इंद्रियों की क्रिया प्रथम होने के कारण वह बौद्धिक तर्कणा को इंद्रियानुभूति का अंतिम पग नहीं बना देती? तर्कबुद्धि इंद्रियों का अतिक्रमण कर जाती है तथा हमें सत्य के अन्य एवं सूक्ष्मतर स्तरों में प्रवेश प्रदान करती है, इसी तरह से अंतर्ज्ञान तर्कबुद्धि को अतिक्रम कर जाता है तथा हमें सत्य की अधिक साक्षात् एवं ज्योतिर्मय शक्ति में प्रवेश प्रदान नहीं करता है। लेकिन यह अत्यंत स्पष्ट है कि अंतर्ज्ञान के प्रयोग में कवि व कलाकार ठीक उसी प्रकार की कार्यधारा का अवलंबन नहीं कर सकते जिस प्रकार की वैज्ञानिक व दार्शनिक लियोनार्दो दा विंसी के विज्ञान संबंधी अद्‌भूत अंतर्ज्ञान व कला विषयक सर्जनशील अंतर्ज्ञान एक ही शक्ति से निकले, किंतु उनके चारों तरफ की या अवांतर मानसिक क्रियाएं भिन्न-भिन्न गुण-धर्म तथा भिन्न रंग-रूप की थी। स्वयं कला में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के अंतर्ज्ञान होते हैं।

सौंदर्य काव्य व ललित-कलाओं का एक जरूरी तत्त्व है जिसका बहुत ही सीधा संबंध मानव के भावात्मक संवेगों के साथ है। चित्रकार जितनी सुंदर कल्पना कर सकता है उसका चित्र उतना ही सुंदर होता है। सौंदर्य की ही कल्पना ललित कला का मुख्य स्तंभ है। काव्य की समृद्धि के लिये यह जरूरी है कि सौंदर्य सौंदर्य-दृष्टि में वैविध्य वर्तमान हो। कवि की यह बहुत बड़ी शक्ति है कि वह विषय से अपनी सत्ता को पृथक् रखकर उसका विश्लेषण भी करे और फिर इच्छानुसार उससे मिलकर एक भी हो जाये।[1] समस्त ब्रह्मांड का स्रष्टा एक है। वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, नित्य, स्वयंभू, नेति-नेति, परम शीलवान् एवं परम सौंदर्यवान है। उसके इन अलौकिक, अतुल्य एवं स्तुत्य गुणों का समावेश उसके द्वारा उत्पन्न की गई सृष्टि में हुआ करता है। शील, शक्ति, व्यापकता, नित्यता एवं स्वयंभूता की तरह सृष्टि में सौंदर्य की सत्ता सर्वत्र विद्यमान है। इस सौंदर्य का प्रस्तार केवल मानवीय सौंदर्य तक

ही नहीं है वरन् उसके वर्त्म में दृश्य तथा दृश्येत्तर सौंदर्य सत्ताओं का भी विनियोग है। वस्तुत:, मानव मन जिस रूप, जिस वस्तु तथा जिस भाव से आनंदानुभव करे; वही सौंदर्य है।[2] किसी भी जाति की संस्कृति का सौंदर्यात्मक पहलू अति महत्वपूर्ण होता है। वह अपने मूल्यांकन के संबंध में अति सावधानी की अपेक्षा रखता है। अपने मूल्यांकन के संबंध में लगभग उतनी ही सूक्ष्म परीक्षा और सतर्कता की अपेक्षा करता है जितनी कि दर्शन, धर्म और केंद्रीय रचनात्मक विचार जो कि भारतीय जीवन के आधार रहे हैं और जिनकी कि अधिकांश कला एवं साहित्य अर्थपूर्ण सौंदर्यात्मक रूपों में एक सचेतन अभिव्यक्ति है।[3] सौंदर्य शब्द भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं कला में अधिक प्राचीन नहीं है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि है कि इस शब्द से जिस तरफ संकेत किया जाता है वह भारत में विद्यमान नहीं था। शब्द एवं शब्द संकेतित वस्तु में भेद होता है। कुछ पूर्वाग्रह-ग्रस्त पाश्चात्य समीक्षकों एवं उनके अंध-अनुयायी भारतीय समीक्षकों ने जो यह घोषणा कर डाली कि सौंदर्य शब्द के प्राचीन भारतीय साहित्य में न होने से भारत में सौंदर्य-संकेतित कुछ भी अस्तित्ववान नहीं था, यह उनकी निरी मूढ़ता एवं अज्ञानता का ही परिचायक है। प्राचीन भारतीय साहित्य में सौंदर्य शब्द के पर्यायवाची रूचिर, चारू, शोभन, कांत, मनोरम, मनोज्ञ, मंजु, ललित, सुष्ठु, काव्य, कमनीय, रमणीय आदि बहुतायत से उपलब्ध होते हैं।[4] आंग्ल भाषा के 'मेडिसिन' शब्द का प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध न होना यह सिद्ध नहीं करता कि उस समय के भारतीयों को औषधियों का कोई ज्ञान नहीं था। सौंदर्य शब्द संकेतित संबंधित प्राचीन भारत में उच्च कोटि का ज्ञान उपलब्ध था। सौंदर्य शब्द के पर्यायों की निबंधना में वैदिक ऋषियों ने अपनी उदारता एवं सहृदयता का परिचय देते हुए इसका प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। वैदिक साहित्य भारतीयों के सौंदर्य बोध का पहला स्फुरण है। रूप, चारू, रूचि, वल्गु, प्रिय, पेशस्, भद्र, रण्व, चित्र, मधुर, श्री या श्रिय आदि 'सौंदर्य' या सुंदर के वाचक शब्द के रूप में प्रयुक्त हुये हैं। ऋग्वेद् में सौंदर्य का सर्वप्रथम उल्लेख 'श्रीसूक्त' के रूप में मिलता है। वेद में सौंदर्य तत्व को 'स्वस्ति' कहकर संबोधित किया गया है। जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को 'स्वस्तिमान' नाम से वेद में कहा गया है। स्वस्ति शब्द 'सु' और 'अस्ति' के योग से बना है। 'सु' का अर्थ सुंदर और 'अस्ति' का अर्थ सत्ता है। स्वस्ति का अर्थ है 'सत्य सुंदर या सुंदरसत्य'। साधारण तथा हम अस्ति का प्रयोग वर्तमान सत्ता के लिये करते हैं, परंतु जो वर्तमान में है (अस्ति) वह अतीत में थी (आसीत) या नहीं थी (नासीत) और भविष्य में होगी (भविष्यति) या न होगी (न वा भविष्यति), अत: इनको खंड-खंड सत्य ही कह सकते हैं और मानव मन द्वारा इसको ही जानने का प्रयत्न किया जा सकता है। अखंड सत् तो एक है जो खंडश: अनेक नामों से जाना जाता है।[5] पाश्चात्य तर्कपाश से आबद्ध मन इसे जानने में समर्थ नहीं हो सकता। विश्लेषण को सब कुछ मानने वाली बुद्धि यानि टुकड़ों में विभाजित करके देखने वाली बुद्धि इस सौंदर्य तत्व को जानने में समर्थ नहीं हो सकती है। सौदर्य बाहर की

कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। युरोपीय कला समीक्षा की यह एक बड़ी ऊँची उड़ान या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गई है। पर वास्तव में यह भाषा के गड़बड़झाले के सिवाय कुछ नहीं है। जैसे वीरकर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं वैसे ही सुंदर से पृथक् सौंदर्य कोई पदार्थ नहीं है।[6]

सौंदर्य : शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

सौंदर्य शब्द सुंदर का भाववाचक रूप है। सुंदर शब्द में स्यञ् प्रत्यय लगने से 'सौंदर्य' शब्द की निष्पत्ति होती है–सुंदरस्य भावः सौंदर्यम्। 'सुद' पूर्वक 'रा' (आदाने) धातु में औणादिक 'अच्' प्रत्यय के योग से यह शब्द निष्पन्न होता है । किसी को भलि प्रकार से प्रसन्न करने के अर्थ में भी यह शब्द प्रयुक्त होता है–सुष्ठु नंदयति इति सुंदर। भिन्न-भिन्न कोशकार सुंदर शब्द की व्युत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। हलायुधकोश में सुंदर शब्द की व्युत्पत्ति 'सु' उपसर्गपूर्वक 'उंदी' धातु में 'अर' प्रत्यय के योग से सिद्ध की गई है।[7] वामन शिवराम आप्टे के अनुसार 'सुंदर' शब्द की व्युत्पत्ति 'सुंद+अर' करते हुये प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर व आकर्षक अर्थ किये हैं।[8] शब्दकल्पद्रुम में 'सुंदर' शब्द की उत्पत्ति करते हुये कहा गया है–सुष्ठु उनंति आर्दी करोति चित्तमिति अर्थात् जो चित्त को भली प्रकार से आर्द्र करता है, वह सुंदर है।[9] डॉ. खंडेलवाल ने सुंदर शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में एक अद्‌भूत बात कही है। वे कहते हैं कि बोली में 'अचानक' शब्द का रूपांतर 'अचानचक' किंतु सतत बाहुल्य प्रयोग की धारा से 'अचानक' के 'अ' का लोप हो गया। इस प्रकार इस मौलिक शब्द 'अचानक' का रूप 'चानचक' हो गया जिसका प्रतिदिन के व्यवहार में अधिक प्रयोग होता है। इसी तथ्यानुसार संस्कृत शब्द असून अर्थात प्राणों को तथा ददाति-देता है, अर्थात जो प्राणों को दे वह सुंदर हुआ। इस व्युत्पत्ति के अनुसार असून शब्द के अकार के लोप अचानक के स्थान में ह्रस्व उकार हो गया था तथा संस्कृत 'पुत्र' शब्द का पालि-भाषा में पुत्त होता है। इसी प्रकार व्युत्पत्ति से सुंदर शब्द का अर्थ हुआ जो प्राणों को दे अर्थात् जो जीवन या आनंद दे – यह हुआ।[10]

सौंदर्य : परिभाषा एवं स्वरूप

भारतीय मन का स्वभाव जो इसकी समस्त संस्कृति के मूल में रहा है और दर्शन, धर्म, कला और जीवन के क्षेत्र में इसके सृजनात्मक कार्यकलाप के अधिकांश का उद्‌गम और आधार रहा है। आध्यात्मिक, अंतर्ज्ञानात्मक और आंतरात्मिक ही रहा है। लेकिन इस प्रवृत्ति ने सबल और समृद्ध बौद्धिक, व्यावहारिक और प्राणिक कर्मण्यता का बहिष्कार नहीं किया है अपितु शक्तिशाली रूप में इसे सहारा ही प्रदान किया है। सौंदर्य को परिभाषित करने हेतु अनेक दृष्टियां वर्तमान हैं यथा भारतीय, पाश्चात्य, मार्क्सवादी एवं समेकित दृष्टि इन सबका संक्षेप में विवरण अग्रलिखित प्रकार से है :

भारतीय सौंदर्य-चिंतन : पूर्वाग्रहग्रसित अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान यह मानते हैं कि भारत में कभी सौंदर्य के संबंध में विचार नहीं हुआ। वस्तुतः स्थिति इतनी

निराशाजनक नहीं है, स्वयं लक्षण ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दावली संकेत करती है कि उनके पीछे एक उच्चकोटि की सौंदर्य-शास्त्रीय परंपरा रही है।[11] हमारा मन ही 'सुम्' अनुभूति का दाता होने से सुंद है और जिस वस्तु या विभाव द्वारा आकर्षित होकर मन में अनुभूति विभाजित होती है उसे सुंदर कहा जाता है, अतः उस वस्तु या विभाव के आकर्षण को ही सौंदर्य कह सकते हैं। इसीलिए मनोहारिता, मनोज्ञता आदि शब्द सौंदर्य के पर्यायवाची समझे जाते हैं।[12] डॉ. नगेंद्र का कहना है कि सौंदर्य के मधुर पक्ष का उषःसूक्त में उदातपक्ष का पुरुष, इंद्र व विष्णु सुक्तों में अत्यंत भव्य चित्रण किया गया है। उनके अनुसार ऋग्वेद् के वाणी के सौंदर्य के व्याज से सौंदर्य-शास्त्र के प्रायः सभी अंगों का सूत्रबद्ध किंतु मार्मिक विवेचन मिलता है। वेदों में सौंदर्य दिव्य और लौकिक, एंद्रिय और आत्मिक रूपों का विवेचन प्राप्त है।[13] जो सौंदर्य-शास्त्र के विद्वान प्राचीन भारत में 'सुंदर' शब्द को अनुपलब्ध मानते हैं उन्हें वाल्मीकि रामायण के 'सुंदरकांड' को देखना-पढ़ना चाहिये। इसी ग्रंथ में सुंदर के समशील शब्दों शोभन् चारू, अभिराम, रम्य, सुभग आदि का अनेकशः प्रयोग हुआ है। सौंदर्य के सभी रूपों का उत्कृष्ट वर्णन इसमें मिलता है।[14] देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार सौंदर्य की अवधारणा में बदलाव होता रहता है। इनसे सौंदर्य की दृष्टि में परिवर्तन अवश्यंभावी है। देश और काल के आधार पर सौंदर्य के मूल्य एवं मान बदलते रहते हैं अर्थात् कालकृत और देशकृत भेदों से सौंदर्य-दृष्टि बदलती रहती है, जैसे भारतीय दृष्टि के अनुसार सौदंर्य सर्वथा और सर्वदा अंतरंग है। इसी भारतीय विशेषता को स्वामी विवेकानंद ने एशियाव्यापी प्राच्य प्रवृत्ति कहा है।[15] श्री हरिवंश सिंह शास्त्री ने सौंदर्य की परिभाषा अद्वैत वेदांत के प्रतिष्ठापक आचार्य शंकर के अनुसार की है। वे कहते हैं – स्थूल या सूक्ष्म जगत् में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौंदर्य है।[16] अद्वैत वेदांत के अनुसार अज्ञान अर्थात् उपाधि का आवरण हट जाने पर चेतन का पारमार्थिक स्वरूप शेष रहा जाता है। जिस उपाधि में उसका चिदाभास प्रतिबिंबित था उसके विलीन हो जाने से वह उसी प्रकार स्व स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, जिस प्रकार दर्पण के हट जाने से मुख का प्रतिबिंब मिटकर केवल मुख ही शेष रह जाता है। व्यष्टि चेतना समष्टि रूप होकर एक अद्वैत ब्रह्म होकर अपने यथार्थ स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।[17] इससे बुद्धि निष्काम हो जाती है, क्योंकि उस समय नामरूपादि हमारी दृष्टि नहीं रहती। विषय से हटकर विषयी ही प्रधान हो जाता है। प्रातिभासिक, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक में से केवल पारमार्थिक स्तर ही शेष रहा जाता है। ऐसे में ही सौंदर्य की अनुभूति होती है। जब कभी हमारी बुद्धि निष्काम होगी, तभी हमें सौंदर्यबोध होगा।[18] सौंदर्यानुभूति एवं सौंदर्याभिव्यक्ति का संबंध संप्रज्ञात समाधि की अवस्था से है। संप्रज्ञात समाधि के अंतर्गत सवितर्क, सविचार एवं आनंदयोग की अवस्था में सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है। सौंदर्य का आनंद निष्काम, निष्पाप एवं सहजानंद है। यह ऋतंभरा प्रज्ञा है। यह एक विशिष्ट चित्त की वृत्ति है। एकाग्रता के आलंबन के साथ तदाकारकारित चित्त में अन्य सब वृत्तियां क्षीण होकर उसी एक वृत्ति को प्रौढ बनाया

करती है। उस एकमात्र वृत्ति में ध्यान के सातत्य से प्रज्ञा का उदय होता है। यही प्रज्ञा अन्य वृत्तियों का नाश करती है। ध्यान के बल से अटूट बनी ध्येयालंबनाकार चित्तवृत्ति ही संप्रज्ञात समाधि कहलाती है। इस संबंध में और विस्तृत विवरण देते हुये भारतीय राष्ट्रवाद एवं आध्यात्मिकता के समर्थक श्री अरविंद कहते हैं – एक महान पूर्वीय कलाकृति उस मनुष्य के सामने अपना रहस्य सहज प्रकट नहीं करती जो इसके पास केवल सौंदर्यविषयक कुतूहल के भाव में या विवेचनशील समीक्षात्मक बाह्य मन को लेकर आता है और उस मनुष्य के सम्मुख तो यह अपना रहस्य और भी कम प्रकट करती है जो इसके पास विचित्र और विदेशी वस्तुओं के बीच में गुजरने वाले एक परिपक्व और पक्षपाती पर्यटक के रूप में आता है, इसे तो निर्जनता में, अपनी आत्मा के एकांत में एवं ऐसे क्षणों में देखना होगा जबकि हम सुदीर्घ और गंभीर ध्यान करने में समर्थ होते हैं और स्थूल भौतिक जीवन की रूढ़ियों के बोझ से यथासंभव कम से कम दबे हुये होते हैं।[19] सौंदर्य एक अत्यंत मौलिक प्रश्न है, इसे आप साधारण प्रश्न कहकर टाल नहीं सकते। सौंदर्य यानि हृदय में करुणा की अनुभूति होना। इसका आगमन तब होता है जब हमारा मन व हमारा हृदय किसी वस्तु के प्रति बिना किसी बाधा या रुकावट के पूर्णतया संवादित होता है ताकि हम निश्चित रूप से अखंड आनंद को महसूस कर सकें। जिद्दू कृष्णमूर्ति इस संबंध में कहते हैं कि किसी भी वस्तु का अपने आप में होना ही उसका सौंदर्य है।[20] भले ही कोई व्यक्ति और किसी महान सौंदर्य से सर्वदा घिरा रहे, चाहे उसके चारों ओर पर्वतों की शृंखला हो, चारों ओर खेत हों, सरिताएं हों लेकिन जब तक वह इन सबके प्रति सजग नहीं है, तब तक ये सब उस हेतु निर्जीव हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सौंदर्य को मन के भीतर अवस्थित माना है। वे कहते हैं कि कुछ रूप-रंग की वस्तुएं ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिये हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अंत:स्सत्ता की यही तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति है।[21] किसी वस्तु के सुंदर लगने के कारण को समझाते हुये वे कहते हैं कि जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणत जितनी अधिक होती है, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिये सुंदर कही जायेगी। भीतर बाहर का भेद व्यर्थ है। जो भीतर है वही बाहर है। आचार्य रामचंद्र की सौंदर्य की उपर्युक्त अवधारणा में सनातन भारतीय आध्यात्मिक अंत:सत्ता की प्रतिध्वनि गुंजायमान है जिसके संबंध में प्रसिद्ध समकालीन दार्शनिक जिद्दू कृष्णमूर्ति कहते हैं कि अपना आकलन किये बिना होनेवाली सारी क्रियाएं मनुष्य को भ्रम, उलझन और दुख की ओर खींचकर ले जाती हैं। लेकिन जब अपने विचारों के और अहम् के समस्त व्यापारों का आकलन हो जाता है, जब अहम् केंद्रित शून्य विमुक्तता आ जाती है, तभी संवेदनशीलता का जन्म होता है।[22]

सौंदर्य के संबंध में समीक्षकों एवं साहित्यकारों के अपने-अपने विचार हैं। हरेक अपने विचारों को निश्चयात्मक, सही एवं समयानुकूल सिद्ध करने पर तुला रहता

है लेकिन यह किसी सौंदर्य की अनुभूति करने वाले व्यक्ति की पहचान नहीं है। ऐसी दृढ़ता एवं निश्चयात्मकता वास्तव में सौंदर्य से पीठ फेरना है। निश्चयात्मक रहकर व्यक्ति अपने को समेट लेता है, बाकी अस्तित्व से अपने को काट लेता है तथा अपने को दुर्भेद्य बना लेता है। सहजभेद्यता एवं विमुक्तता के बिना संवेदनशीलता कैसे आयेगी? इस संवेदनशीलता के बिना सौंदर्यानुभूति असंभव है। इन पदार्थवादी एवं पाश्चात्य सौंदर्योपासकों का खंडन करते हुये जिद्दू कृष्णमूर्ति कहते हैं कि सुंदर बनने की प्रक्रिया का अर्थ सुंदर होना नहीं है। जो लोग महत्वाकांक्षी होते हैं, चतुर या मक्कार होते हैं, या सौंदर्योपासक होते हैं वे केवल स्वविक्षेपित वस्तुओं की ही पूजा करते हैं। वे अपने को पूरी तरह परिवेष्टित कर लेते हैं, अपने चारों ओर परकोटा खड़ा कर लेते हैं। इन सबके सामने दुख ही फैला रहता है। यह सौंदर्य का शोध, ये कलाविषयक भाषण, सबके सब जीवन से दूर भागने के यानि अपने से दूर-दूर जाने के प्रतिष्ठा प्राप्त और मान्यता प्राप्त कोरे बहाने हैं।[23] इसी सौंदर्य की गुह्यता की व्याख्या करते हुये आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि जिस सौंदर्य की भावना में मग्न होकर मनुष्य पृथक् अपनी सत्ता की प्रतीति या विसर्जन करता है, वह अवश्य एक दिव्य विभूति है। भक्त लोग अपनी उपासना या ध्यान में इसी विभूति का अवलंबन करते हैं। तुलसी और सूर ऐसे सगुणोपासक भक्त राम और कृष्ण की सौंदर्य भावना में मग्न होकर ऐसी मंगलदशा का अनुभव कर गये हैं, जिसके सामने कैवल्य या मुक्ति की कामना का कहीं पता नहीं लगता।[24]

सौंदर्य के दो रूप हैं। एक तो वह जो हमें अभिभूत करता है, प्रभावित करता है, चालित करता है, पर इसलिये नहीं कि वह ऐसा करना चाहता है। कोई अदृश्य शक्ति उसके द्वारा हमें चालित, प्रेरित या अभिभूत करता है। दूसरा पद-पद पर मानव-चित्त के अपार औत्सुक्य को प्रकट करने की इच्छाशक्ति भाषा से टकराती है। अपनी अनुभूति को जब भाषा द्वारा सीधे नहीं प्रकट कर पाती तो उपमा का सहारा लेती है। उससे भी काम नहीं चलता तो उत्प्रेक्षा का सहारा लेती है। इच्छा गति है, क्रिया स्थिति है। गति और स्थिति का यह द्वंद्व चलता रहता है। इसी से रूप बनता है, छंद बनता है, संगीत बनता है, नृत्य बनता है। इच्छा काल है, क्रिया देश है। इसी देश-काल के द्वंद्व से जीवन रूप लेता है प्रवाह के रूप में। इसी से धर्माचरण बनता है। नैतिकता बनती है। इन सबको छापकर, सबको अभिभूत करके, सबको अंतर्ग्रंथित करके जो सामग्रय भाव है वह सौंदर्य का दूसरा रूप है। यह भाषा में, छंद में मिथक रूप में, नृत्य में, गीत में, मूर्ति में, चित्र में, सदाचार में अपने आपको प्रकट करता है। एक प्राकृतिक सौंदर्य है दूसरा मानवीय इच्छाशक्ति का विलास है। दूसरा सौंदर्य प्रथम द्वारा चालित है, पर हम मनुष्य के अंतरतर की अपार इच्छाशक्ति को रूप देने का प्रयास एक अनुभूति देकर विरत हो जाता है। दूसरा अनुभूति से उत्पन्न होकर अनुभूति-परंपरा का निर्माण करता है। प्रथम सौंदर्य रूप से व्यावृत्त करने के लिए इसे हम लालित्य कहेंगे। लालित्य अर्थात प्राकृतिक सौंदर्य से भिन्न किंतु उसके समानांतर

चलनेवाला मानव रचित सौंदर्य।[25] सर्जनात्मक रूप ग्रहण करती मनुष्य की इच्छाशक्ति को तंत्र के सूत्रों में विश्वव्यापिनी सर्जनात्मक शक्ति 'ललिता' का व्यष्टिगत रूप कहा जाता है। सत्पुरुषों के हृदय में निवास करने वाली ललिता ही वह शक्ति हो जो मनुष्य को नयी रचनाओं हेतु प्रेरित करती है। इसलिये इस परंपरा-गृहित अर्थ मानव रचित सौदर्य को 'लालित्य' कहना उचित है। इस ललिता की स्तुति में आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि जहाँ कहीं मानव-चित्त में सौंदर्य का आकर्षण है, सौंदर्य रचना की प्रवृति है। सौंदर्यास्वादन का रस है, वहीं यह देवी क्रियाशील है।[26] डॉ. रामविलास शर्मा के मतानुसार सौंदर्य-शास्त्र के विद्वान जिस सौंदर्य का विवेचन करते हैं वह साहित्य तथा अन्य ललित कलाओं का सौंदर्य होता हैं प्रकृति और मानव जीवन के सौंदर्य की व्याख्या किये बिना कलात्मक सौंदर्य का विवेचन करना आनंददायक गुण का नाम सौंदर्य है।[27] डॉ. कुमार विमल के मतानुसार कालिदास की मान्यताएं पाश्चात्य सौंदर्य-शास्त्री रकस्टल आदि से मेल रखती हैं। सौंदर्य-शास्त्र के संबंध में कालिदास ने भी विकलता का प्रश्न उठाया है। कालिदास की एक और मान्यता पाश्चात्य वस्तुनिष्ठ सौंदर्यशास्त्रियों से साम्य रखती है। वस्तुनिष्ठ सौंदर्यशास्त्रियों का कहना है कि सौंदर्य वस्तु में है, द्रष्टा के मन में नहीं। अत: जो वस्तु सुंदर है, वह सर्वत्र सुंदर है।[28] माध सौंदर्य को आनुभूतिक स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार 'क्षणे-क्षणे' यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया: अर्थात् जो क्षण-क्षण नवीनता को प्राप्त करता रहता है, वही रूप सुंदर है।[29] भाववादी एवं भौतिकवादी सौंदर्यबोध का विवाद भारतीय सौंदर्य-शास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में पाश्चात्य समीक्षकों एवं दार्शनिकों की देन है। भारतीय सौंदर्य-शास्त्र की आत्मा सदैव से भाववादी, अध्यात्मपरक एवं आंतरात्मिक रही है। वह पदार्थ पर जाकर रुक नहीं गई लेकिन पाश्चात्य सौंदर्य शास्त्रियों का हठाग्रह भौतिकवाद पर अटका रहता है तथा वे भारतीय सौंदर्य-शास्त्र को भी भौतिकवाद-भाववाद के विवाद में उलझाये रहने का कुचक्र रचते रहते हैं। भूतकाल में पश्चिम ने भारतीय सभ्यता की, अधिकतर इसके सौंदर्यात्मक पक्ष की, विद्वेषपूर्ण और सहानुभूति रहित आलोचना की है और उस आलोचना ने इसकी ललित कलाओं, स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला की घृणापूर्ण या तीव्र निंदा का रूप ग्रहण किया है।[30] एक ऐसे ही विद्वान की कुछ पंक्तियों को पढ़िये जिनमें उपर्युक्त कथन की सत्यता निहित है—भारतीय काव्य-शास्त्र के सुव्यवस्थित चिंतन का आरंभ बिंदु अगर भरत के नाट्य-शास्त्र को मानें तो नि:संकोच कहा जा सकता है कि भारतीय सौंदर्य-चिंतन ईसा की पहली सहस्राब्दी के पूर्वार्द्ध में उतना अध्यात्मपरक नहीं था, जितना उत्तरार्द्ध की अंतिम शताब्दियों में होता चला गया।"[31]

ऐसे विद्वानों ने आचार्य भरत को अध्यात्मवाद से रहित घोषित किया है तथा उनके रसाधार को भौतिक कहा है। परवर्ती व्याख्याकारों ने उसकी उपेक्षा करके धीरे-धीरे उसे अलौकिकता, और एक हद तक समाज निरपेक्षता की भूमि तक पहुँचा दिया।[32] इसी तरह भट्टलोल्लट को भी ऐसे समीक्षकों ने यथार्थवादी व वस्तुवादी माना

है न कि आत्मवादी व व्यक्तिपरक। शकुंक को भी इन्होंने नाट्य संबंधी सौंदर्यानुभूति की यथार्थता व वस्तुनिष्ठता का ही प्रतिपादक कहा हैं लेकिन माना है कि उनके द्वारा नाट्यानुभूति को लौकिक अनुभूति की तुलना में विलक्षण कहने से रस सूत्र के परवर्ती व्याख्याताओं को रसानुभूति की अध्यात्मवादी व्याख्या करने का मौका मिल गया।[33] शंकुक न्यायाचार्य थे। इस विवेचन को निश्चित दार्शनिक भूमिका पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय सर्वप्रथम शंकुक को ही प्राप्त है।[34] भट्टनायक रसास्वाद की व्याख्या को आध्यात्मिक शब्दावली में प्रस्तुत करते हैं। रसास्वाद या काव्यानंद चित्त की आत्मा में विश्राति का नाम है। यह विश्रांति सत्वोद्रेक से होती है। इसमें रजस व तमस का शमन हो जाता है, सर्वथा अभाव नही। इसीलिये यह सर्वथा आत्मविश्रांति से हीनतर है।[35] रसास्वाद को ब्रह्मास्वाद के स्तर पर अभिनवगुप्त ने भी माना है। इन्होंने रसनिष्पत्ति की प्रक्रिया को शैवाद्वैत में प्रतिपादित आनंदवाद से युक्त कर दिया। इस संबंध में एक व्यग्र एवं विचलित चित्त की किसी विशेष लक्ष्य या सिद्धांत पर पहुंच पाने की शीघ्रता का एक उदाहरण भारतीय-दर्शन एवं भारतीय रसशास्त्र को उद्धृत करते हुये अवलोकनीय है—ईसा की छठी शताब्दी से चले आ रहे दर्शनों के भौतिकवादी एवं भाववादी तत्त्वों की अंतिम परिणति जिस प्रकार घोर भाववादी दार्शनिक शंकराचार्य के अद्वैतवाद में हुई उसी तरह भरत के रस सूत्र की व्याख्याओं के भौतिकवादी एवं अध्यात्मवादी तत्वों की चरम परिणति प्रतिभाशाली विद्वान अभिनवगुप्त की आत्मास्वाद की भाववादी तर्क पद्धति में हुई।[36] वास्तव में इस तरह की मनघड़ंत कपोलकल्पनाएं किसी विषय विशेष के सतही अध्ययन या उसके प्रति वर्तमान पूर्वाग्रहों के कारण ही जन्म लेती हैं। भारतीय-दर्शन या भारतीय सौंदर्य-चिंतन या इस चिंतन के संबंध में भी उपर्युक्त कथन अक्षरश: सही है। एक सिद्धांत या लक्ष्य को चित्त में स्वीकार करके या उसके प्रति कोई निश्चित पूर्वधारणा का निर्माण करके ऊटपटांग एवं बे-सिर पैर के कुतर्क प्रस्तुत करना पाश्चात्य दार्शनिकों, समीक्षकों एवं लेखकों की एक घृणित विशेषता रही है। उन्मुख एवं आग्रहरहित मनोदशा से यदि भारतीय-दर्शन तथा भारतीय रसशास्त्र या सौंदर्यशास्त्र का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि भौतिकवाद से प्रारंभ करके अनेक पड़ावों को पार करते हुये अध्यात्मवाद तक ये सब पहुंचते हैं। कहीं भी किसी वाद के प्रति घृणा या उपेक्षा का भाव मौजूद नहीं है। जरूरत है सिर्फ निष्पक्ष अध्ययन करने की, अपने विचारों के आरोपण की नहीं। भारत में सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन क्यों नहीं हो पाया इस संबंध में एक निराधार कल्पना का उदाहरण देखिये—संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य की गणना विद्या में करके और कलाओं की गणना उपविद्या में करके काव्य तथा कलाओं के बीच एक ऐसी चौड़ी दीवार खड़ी कर दी कि यहां सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन या समग्र ललित कलाओं के तात्त्विक विचार का मार्ग ही अवरूद्ध हो गया"[37] भारतीय सौंदर्य-चिंतन में सभी आधुनिक सौंदर्य-चिंतन के बीज या उनका पल्लवित रूप उपलब्ध हो जायेंगे। पाश्चात्य सौंदर्य संबंधी अनेक नवीन उद्भावनाओं का मूल प्राचीन भारतीय सौंदर्य-चिंतन

में खोजा जा सकता है। आधुनिक सौंदर्य-चिंतन में अत्यधिक विचारित क्रोचे नूतन अभिव्यंजनावाद बुद्ध के कला सिद्धांत से साम्य रखता है..... बुद्धघोष ही नहीं हेमचंद्र व भट्टतोत ने भी सहजज्ञान (क्रोचे का इंट्यूशन) को अत्यधिक महत्व दिया है तथा उसे शिव का तृतीय नेत्र माना है, जिसके कारण कवि अतीत और वर्तमान के अलावा भविष्य को भी जानकर क्रांतदर्शी कहलाता है।[38] जरूरत है सिर्फ निष्पक्ष रूप से विचार करने की। हजार वर्ष की गुलामी के कारण हमारे यहां शिक्षकों, विचारकों एवं प्रशासकों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया है जो पश्चिम द्वारा दिए गए कूड़े को भी हीरे-मोती समझता है तथा अपने स्वयं के देश के हीरे-मोती भी उसे कूड़ा-कबाड़ नजर आते हैं। इस मूढ़ता से छुटकारा पाने की महती जरूरत है।

संदर्भ

1 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, प्रबंध-प्रतिमा, पृ. 157
2 डॉ. रामसजन पाण्डंय, संस्कृति व सौंदर्य, पृ. 28
3 श्री अरविंद, भारतीय संस्कृति के आधार, पृ. 236
4 अमरसिंह, अमरकोश 3/52-53
5 फतह सिंह, भारतीय सौंदर्य-शास्त्र की भूमिका, पूर्व-पीठिका (क)
6 (सं.) मन्नू भंडारी, अजित कुमार, संकल्प का सौंदर्य-शास्त्र, पृ. 17 (सौंदर्य पर आ. रामचंद्र शुक्ल का लेख)
7 हलायुधकोश, पृ. 714
8 वामनशिवराम आप्टे, संस्कृत-हिंदी कोश, पृ. 800
9 राजा राधाकांत देव, शब्दकल्पद्रम, पृ. 373
10 डॉ. रामेश्वरलाला खंडेलवाल, आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और सौंदर्य, पृ. 140
11 फतहसिंह, भारतीय सौंदर्य-शास्त्र की भूमिका, पृ. 111
12 उपरिवत्, पृ. 127
13 डॉ. नगेंद्र, भारतीय सौंदर्य-शास्त्र की भूमिका, पृ. 38
14 डॉ. हरिशंकर मिश्र, सौंदर्य-शास्त्र : स्वरूप एवं संभावनाएं, पृ. 3
15 डॉ. कुमार विमल, सौंदर्य-शास्त्र के तत्त्व, पृ. 114
16 श्री हरिवंश सिंह शास्त्री, सौंदर्य विज्ञान, पृ. 56
17 डॉ. श्रीकांत पांडेय, भारतीय-दर्शन, पृ. 398
18 श्री हरिवंश सिंह शास्त्री, सौंदर्य-विज्ञान, पृ. 118
19 श्री अरविंद, भारतीय संस्कृति के आधार, पृ. 256
20 जिद्दू कृष्णमूर्ति, संस्कृति का प्रश्न, पृ. 209
21 आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, पृ. 132
22 जिद्दू कृष्णमूर्ति, जीवन-भाष्य (प्रथम खंड), पृ. 242
23 जिद्दू कृष्णमूर्ति, जीवन-भाष्य (प्रथम खंड), पृ. 241-242

24 आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, पृ. 132
25 सं. मन्नू भंडारी, अजीत कुमार, संकल्प का सौंदर्य-शास्त्र (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेख) पृ. 25
26 उपरिवत्
27 डॉ. रामविलास शर्मा, सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता और सामाजिक विकास (संकल्प का सौंदर्य-शास्त्र से उद्धृत), पृ. 85-86
28 डॉ. कुमार विमल, सौंदर्य-शास्त्र के तत्व, पृ. 112-113
29 माद्य, शिपालवधम्, 4/27
30 श्री अरविंद, भारतीय संस्कृति के आधार, पृ. 236
31 डॉ. मुकेश गर्ग, साहित्य और सौंदर्यबोध, पृ. 76
32 उपरिवत्, पृ. 77
33 उपरिवत्, पृ. 79
34 डॉ. नगेंद्र, रससिद्धांत, पृ. 158
35 उपरिवत्, पृ. 169
36 डॉ. मुकेश गर्ग, साहित्य और सौंदर्यबोध, पृ. 81
37 डॉ. कुमार विमल, सौंदर्य-शास्त्र के तत्त्व, पृ. 37
38 उपरिवत्, पृ. 114